

**THE ECONOMIC TIMES**

*Date: 26-04-19*

## How to Make 'Work' Work

**Priyaranjan Jha, [The writer is professor, economics, University of California, Irvine, US]**



The recent controversy arising from the reluctance of GoI to release the latest National Sample Survey Office (NSSO) report has added in making job creation and unemployment a central issue this election. The shift from an obsession with GDP growth numbers to jobs and unemployment is actually a welcome change. According to the reportedly leaked numbers from the NSSO report, the unemployment rate at 6.1% in 2017-18 was an all-time high. One may quibble over the exact numbers, and the role of demonetisation and

botched GST rollout in spiking the unemployment rate. However, the longer-term trends are unmistakable and troubling. While the annual job growth was 1.1% from 1993-94 to 2011-12, it slowed down to 0.6% in 2011-15, and the joblessness among the youth and the more educated is rising. Not enough jobs are being created to absorb the growing labour force.

### **We Don't Make Jobs**

Even more worrying is that manufacturing has failed to take off. The share of manufacturing in total employment has remained between 10% and 13% over the last 25 years. While the job growth in manufacturing in 1983-2004 was mainly in unorganised firms, all job growth since then is accounted for by organised firms. This sounds good. However, the bulk of job growth in organised firms is coming from informal labour contracts where workers are hired at lower wages without benefits.

A recent study, 'Firms, Informality and Development: Theory and Evidence From Brazil' by Gabriel Ulyssey ([bit.do/eQm3L](http://bit.do/eQm3L)), suggests that lowering the tax burden of formal jobs, or cracking down on organised firms hiring workers informally, increases formal employment. Simply lowering the entry cost of formalisation, on the other hand, increases the number of organised firms, but not of formal jobs. GoI must adopt a two-pronged approach: remove obstacles to private sector job creation, particularly in the manufacturing sector, complemented by direct job creation in the public sector. In addition to improving infrastructure (both physical and digital), 'ease of doing business', and access to credit, it is imperative to reform rigid labour laws that induce firms to substitute capital for labour.

Additionally, globalisation has brought enormous opportunities for small- and medium-sized firms to participate in the global value chain. GoI can lend a helping hand in enabling them to sell their products worldwide, which will free them from the constraints of low domestic demand. Here, lessons can be drawn from the success of Taobao villages in China in creating rural jobs by exploiting the power of ecommerce ([bit.do/eQm5a](http://bit.do/eQm5a)). For direct job creation by the public sector, to the standard list of infrastructure, health and education, one must add green jobs that also improve the environment. Should the government guarantee jobs to everyone on demand? Even though the record of MGNREGA is mixed, some economists advocate an urban jobs guarantee programme along similar lines. But does the State have adequate organisational and managerial capacity to implement it at the scale required?

## Catch Them Old

An alternative would be a programme along the lines suggested by my colleague David Neumark in his September 2018 policy paper, 'Rebuilding Communities Job Subsidies' ([bit.do/eQm9x](http://bit.do/eQm9x)), to revive job creation in poor areas of the US. Instead of governments creating jobs directly, local non-profits will create jobs fully funded by the government for 18 months. After 18 months, the workers are expected to be employed by the private sector and the government will provide a 50% wage subsidy for another 18 months. The jobs themselves will have the twin objective of imparting valuable skills to workers to prepare them for future private sector jobs in construction, education and health, and improve the local infrastructure such as schools, parks and community health centres. In the Indian context, one can easily envision a public-private partnership (PPP) with a non-profit like Pratham, which already imparts vocational training to young adults from poor backgrounds.

The PPPs can also be targeted to address the problem of extremely low female labour force participation rate that declined from 35% in 2005 to 27% in 2018, taking India's rank to 169th out of 188 countries. (China's was 61% in 2018). This is a low hanging fruit of development that India must harvest by improving employment opportunities for women. Women working outside their homes not only bring additional income but have a stronger intra-household bargaining power resulting in better outcomes for children. Providing government-funded vocational training to women for jobs such as child care services, elderly care, nursing, beauticians and developing women-friendly workplaces that allow flexible hours and onsite child care will go a long way in increasing women's labour force participation.

As we speak, robots, e-commerce and artificial intelligence (AI) systems are replacing humans in jobs. This makes it imperative to develop a workforce capable of continuous learning and performing creative jobs that require cognitive skills. Improving the quality of education at all levels becomes important. Since education reforms yield results with a 15-20-year lag, they are not on the radar of politicians with an eye on the next election cycle. The recent efforts of the Delhi government in improving the quality of public schools must be applauded, and should serve as a model for other states to emulate.



**दैनिक भास्कर**

Date: 26-04-19

## न्यायपालिका से जुड़े विवाद का शीघ्र पटाक्षेप होना जरूरी

संपादकीय

सर्वोच्च अदालत एक बार फिर सुर्खियों में है। गलत वजहों से। मुख्य न्यायाधीश रंजन गोगोई पर यौन शोषण के गंभीर आरोप लगने के बाद घमासान सा मच गया है। सबसे चिंताजनक तथ्य तो यह है कि इन दिनों इस संस्थान के खबरों में आने की वजहें लगातार विवाद ही हैं। शुरुआत जजों की प्रेस कॉन्फ्रेंस से होती है। जज गंभीर आरोप लगाते हैं, पूरा देश अवाक सा देखता रहता है, लेकिन ये तो शुरुआत भर थी। देश के नामी उद्योगपति अनिल अंबानी की जमानत के बारे में अदालत की वेबसाइट पर गलत जानकारी अपलोड कर दी जाती है। हालांकि, दोषी कर्मचारियों को इस कारगुजारी की

सजा जरूर मिल जाती है, लेकिन सवाल भी खड़ा हो जाता है कि आखिर कर्मचारी इतना बड़ा दुस्साहस कैसे कर लेते हैं। सर्वोच्च अदालत की शान, रुतबा और सम्मान हमारे देश में अभी तक तो सर्वोपरि ही रहा है। ऐसे में विवाद उसकी साख पर बट्टा लगाने का ही काम करते हैं। रफाल के मामले में भी टायपिंग की गलती वाला विवाद सर्वोच्च अदालत की मौजूदा कार्यशैली पर ही सवाल खड़ा करता है। असल में ऐसी संस्थाएं सिर्फ और सिर्फ अपनी साख, प्रतिष्ठा, कार्यशैली और उच्च कोटि की गुणवत्ता के कारण ही पहचानी जाती हैं। जब भी इस तरह के विवाद सामने आते हैं, पूरे देश का विश्वास डगमगा जाता है। हालांकि देश में न्यायपालिका की जड़ें बेहद मजबूत हैं और नागरिकों के भरोसे ने उन्हें सींचकर बेहद पुष्ट कर दिया है, लेकिन फिर भी लगातार हमले गहरी जड़ों को हिला तो सकते ही हैं। हाल ही में जो आरोप मुख्य न्यायाधीश पर लगे हैं, वो असल में एक व्यक्ति से जुड़ा मसला भर नहीं है। जिस तरह से इस पूरे मामले में बखेड़ा खड़ा हो रहा है, वो बेहद चिंताजनक है। बेंच फिक्सिंग के आरोपों को किसी भी सूरत में हल्के में नहीं लिया जा सकता। यदि ये आरोप अंश मात्र भी सही हैं तो हमारी न्याय व्यवस्था पर ही सवालिया निशान खड़े हो जाएंगे। चूंकि, आरोप देश के मुख्य न्यायाधीश पर लगे हैं, लिहाजा इनकी जांच बेहद गंभीरता के साथ जल्द से जल्द होनी चाहिए। इस जांच में जितनी देर होगी, मामला उतना ज्यादा पेचीदा होता जाएगा और लगातार मीडिया में बना रहेगा। अगर ऐसा होता है तो यह न्यायतंत्र की छवि के लिए अच्छा नहीं है। इसलिए विवाद का त्वरित पटाक्षेप सभी के लिए शुभ साबित होगा।

## नईदुनिया

Date:26- 04-19

### गंभीर आरोपों की जांच

#### संपादकीय

यह नितांत अनिवार्य था कि उन सनसनीखेज आरोपों की भी कोई गहन जांच होती जिनके तहत यह कहा गया कि सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ की गई यौन उत्पीड़न की शिकायत एक बड़ी साजिश का हिस्सा है और यह उन लोगों ने रची जो बेंच फिक्सिंग की ताक में रहते हैं। चूंकि एक वकील की ओर से लगाए गए ये आरोप सुप्रीम कोर्ट की साख को चोट पहुंचाने वाले हैं इसलिए उनकी गहन जांच होनी ही चाहिए थी। ऐसी किसी जांच की आवश्यकता इसलिए भी थी, क्योंकि कुछ मामलों में पहले भी बेंच फिक्सिंग का संदेह सतह पर आ चुका है। बेंच फिक्सिंग का आरोप कितना गंभीर है, इसका पता न्यायाधीशों की इस टिप्पणी से चलता है कि देश के अमीरों और ताकतवर लोगों को यह बताने का समय आ गया है कि वे आग से खेल रहे हैं। सुप्रीम कोर्ट ने बेंच फिक्सिंग के आरोपों की जांच पूर्व न्यायाधीश एके पटनायक को सौंपी है। पटनायक समिति को यह भी अधिकार दिया गया है कि जरूरत पड़ने पर वह खुफिया ब्यूरो और केंद्रीय जांच ब्यूरो का भी सहयोग ले सकती है। पता नहीं, इसकी आवश्यकता पड़ेगी या नहीं, लेकिन जरूरी यह है कि इन आरोपों की तह तक जाया जाए।

एक अर्से से सुप्रीम कोर्ट असहज करने वाले सवालियों से घिरा है। देश की सबसे बड़ी अदालत को सवालियों और संदेह से परे होना ही नहीं चाहिए, बल्कि दिखना भी चाहिए। इससे ही आम जनता का उस पर भरोसा बना रह सकता है। सुप्रीम कोर्ट न्याय का अंतिम सहारा है और हर ओर से निराश लोग इस आस में उसके पास पहुंचते हैं कि वहां से तो उन्हें न्याय मिलेगा ही। यह भरोसा कायम रखने के लिए बेंच फिक्सिंग के आरोपों की केवल जांच ही जरूरी नहीं है, बल्कि यह

व्यवस्था करना भी आवश्यक है कि भविष्य में किसी तरह के संदेह के लिए गुंजाइश न रहे। चूंकि न्यायपालिका में भ्रष्टाचार का सवाल नया नहीं है इसलिए सुप्रीम कोर्ट में बेंच फिक्सिंग के आरोपों की जांच के साथ ही यह भी देखा जाना चाहिए कि निचले स्तर की न्यायपालिका भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच से कैसे मुक्त हो? निःसंदेह यह कहना सच से मुंह मोड़ना होगा कि निचले स्तर के न्यायिक तंत्र में सब कुछ सही है। इस सवाल का जवाब मिलना ही चाहिए कि अगर न्यायिक तंत्र दुरुस्त है तो फिर देश में हर स्तर पर इतना भ्रष्टाचार क्यों है? चूंकि पटनायक समिति एक विशेष मामले की ही जांच कर रही है इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि वह उन सब समस्याओं का निदान खोज सकेगी जिनका सामना उच्चतर न्यायपालिका के साथ निचले स्तर का न्यायिक तंत्र कर रहा है। आज जरूरत इसकी है कि जिला स्तर की अदालतों से लेकर सुप्रीम कोर्ट के स्तर पर जो भी खामियां हैं उन्हें दूर करने की कोई ठोस रूपरेखा बने। जैसे मुकदमों की त्वरित सुनवाई के बजाय तारीख पर तारीख का सिलसिला एक बड़ी समस्या है वैसे ही फालतू के मसलों का सर्वोच्च न्यायालय पहुंचना भी। इसकी भी अनदेखी नहीं की जा सकती कि अभी न्यायाधीशों की नियुक्ति का सवाल भी हल होना शेष है।

*Date: 25-04-19*

## तेल का संकट

### संपादकीय

अमेरिका ने भारत सहित आठ देशों-जापान, दक्षिण कोरिया, ताइवान, तुर्की, इटली, यूनान और चीन को ईरान से कच्चा तेल खरीदने की जो रियायत दी थी, उसकी समय सीमा दो मई को समाप्त हो जाएगी। जाहिर है कि अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप ईरान पर अधिकतम दबाव बनाना चाहते हैं ताकि वह अपना परमाणु कार्यक्रम स्थगित कर दे। नई दिल्ली तेहरान से तेल के सबसे बड़े खरीदारों में से एक है। भारत ईरान से तेल का आयात बंद कर दे तो नई दिल्ली का ऊर्जा क्षेत्र और आर्थिक सुरक्षा दोनों गंभीर रूप से प्रभावित हो सकते हैं। इस संकट का उपाय है कि भारत ईरान से तेल की निर्भरता कम कर दे। लेकिन इसका प्रतिकूल असर भारत-ईरान के द्विपक्षीय संबंधों पर पड़ना स्वाभाविक है। पिछले साल मई में इस संकट की शुरुआत हुई थी, जब ट्रंप ने अपना चुनावी वादा पूरा करते हुए मई, 2018 में ईरान पर दबाव बनाने के लिए उसके साथ हुए परमाणु समझौते से अमेरिका को अलग कर लिया था। दरअसल, जुलाई, 2015 में ईरान और संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के पांच स्थायी सदस्यों के बीच परमाणु समझौता हुआ था। पूर्व राष्ट्रपति बराक ओबामा ने नरम रुख अपनाते हुए ईरान के परमाणु कार्यक्रम को सीमित करने के बदले कुछ रियायतें दी थीं, लेकिन ट्रंप का मानना था कि ईरान आतंकवाद को बढ़ावा दे रहा है, परमाणु समझौते की शतरे का उल्लंघन कर रहा है। इसीलिए उन्होंने यह समझौता तोड़ दिया था। ईरान के विरुद्ध अमेरिका की कठोर नीति का असर भारत ही नहीं समूचे विश्व पर पड़ेगा क्योंकि ईरान से तेल की आपूर्ति ठप होने से पूरे विश्व में तेल की कमी होगी। इससे तेल की कीमतों के साथ अन्य पेट्रोलियम पदार्थों की कीमतों में भी इजाफा होगा। दरअसल, अमेरिका ईरान में सत्ता परिवर्तन करवाना चाहता है। वहां 1979 में इस्लामिक क्रांति हुई थी, जिसके बाद ईरान को इस्लामिक गणराज्य घोषित कर दिया गया था। तब से वहां धर्मतंत्र है, और देश का शासन धर्मगुरुओं द्वारा चलाया जाता है। ट्रंप धर्मगुरुओं के शासन को उखाड़ फेंकना चाहते हैं। इस काम में उन्हें कुछ प्रमुख अरब देशों और इस्राइल का सहयोग प्राप्त है। लेकिन अहम सवाल है कि भारत अपनी

ऊर्जा सुरक्षा और आर्थिक स्थिरता को क्षति पहुंचने से रोकने का क्या उपाय करे? जाहिर है कि उसे ईरान पर तेल की निर्भरता का वैकल्पिक रास्ता ढूंढना होगा।

राष्ट्रीय  
**सहारा**

Date:25-04-19

## उचित फैसला

### संपादकीय



सर्वोच्च न्यायालय द्वारा गुजरात में 2002 के दंगों की पीड़िता बिल्किस बानो को मुआवजा, नौकरी और आवास देने का फैसला चुनावी शोर में दब गया है। यह अत्यंत महत्वपूर्ण फैसला है जो भविष्य में दंगा पीड़ितों को न्याय दिलाने की नजीर बन सकता है। वैसे तो गुजरात दंगों के अनेक मामलों में दोषियों को सजा मिल चुकी है, और पीड़ितों को मुआवजा भी। पर 50 लाख रुपये के मुआवजे का यह पहला मामला है।

बिल्किस बानो का मामला गुजरात दंगों के दौरान घटित नृशंसतम घटनाओं में से एक है। तब वह गर्भवती थीं, लेकिन दंगाइयों ने इसका ख्याल किए बिना न केवल उनका बलात्कार किया बल्कि परिवार के सात सदस्यों की निर्मम हत्या कर दी। उनका घर तक जला दिया गया। दंगों के दौरान मनुष्य की हैवानियत की सीमा का यह एक दिल दहलाने वाला उदाहरण है। हालांकि मामले में दोषियों को सजा मिल चुकी है। मामले में गुजरात सरकार दोषी पुलिस अधिकारियों के खिलाफ कार्रवाई भी कर चुकी है। पुलिस अधिकारियों के पेंशन लाभ रोक दिए गए हैं, और बंबई उच्च न्यायालय द्वारा दोषी ठहराए गए आईपीएस अधिकारी की दो रैंक पदावनति कर दी गई है। किंतु मुआवजा दिया गया केवल पांच लाख रुपया। बिल्किस बानो की ओर से इसी के खिलाफ सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर कर अपील की गई थी कि मुआवजे की राशि इतनी हो जो कि भविष्य के लिए नजीर बन सके। न्यायालय ने इसे गंभीरता से लिया और प्रधान न्यायाधीश की अध्यक्षता वाली पीठ ने इसकी सुनवाई की। जैसा हम जानते हैं, सरकारी मुकदमों में परंपरागत तरीके से कानूनी विभाग अपना तर्क रखता है। यहां भी रखा गया कि उनको तय मुआवजा राशि भेजा गया जिसे उन्होंने नहीं लिया है। बहरहाल, सर्वोच्च न्यायालय ने जब अपना फैसला दे दिया है तो यह मामला अब बंद हो जाएगा। किंतु यह भविष्य में यदि दंगे हुए तो उनके पीड़ितों को मुआवजे का आधार बन गया है। गुजरात दंगों को लेकर जितना तूफान खड़ा किया गया उतना कभी किसी दंगे पर नहीं किया गया। न उसके पहले और न उसके बाद। इसके पीछे निस्संदेह, एक व्यक्ति और उसकी राजनीतिक विचारधारा को निशाना बनना मुख्य लक्ष्य था। किंतु इसके कारण दंगों के वैसे सच भी हमारे सामने आए जो शायद न आते तथा न्यायपालिका की अभूतपूर्व सक्रियता का आधार बने। उसी की परिणति रिकॉर्ड संख्या में दंगों के मामलों की सुनवाई, उनमें सजा तथा मुआवजा के रूप में हमारे सामने है।

Date:25-04-19

## वैश्विक सियासत के आर्थिक नतीजे

### आलोक पुराणिक

कच्चा तेल सिर्फ आर्थिक उत्पाद नहीं है। बहुत गहरे में यह राजनीतिक उत्पाद है। हाल में कच्चे तेल के भाव ऊपर जा रहे हैं। ब्रेंट कच्चे तेल के भावों का भारत के लिए खास महत्व है, इसके भाव हाल में एक ही दिन में तीन प्रतिशत से ज्यादा उछल गए। ये पिछले छह महीनों के उच्चतम स्तर पर जा चुके हैं। अभी भाव 74 डॉलर प्रति बैरल (यानी 159 लीटर) है। भावों में तात्कालिक तेजी की वजह है कि अमेरिका ने चेतावनी दी है कि 2 मई, 2019 से भारत समेत कई देशों को ईरान से कच्चा तेल खरीदना बंद करना चाहिए। अमेरिका और ईरान की रंजिशें बहुत पुरानी हैं। दोनों एक दूसरे को लगभग आतंकवादी मुल्क मानते हैं। अमेरिका का शुबहा है कि ईरान परमाणु बम तकनीक पर बहुत आगे के स्तर का काम कर रहा है। उसे हर हाल में रोकना चाहता है। इसके दूसरे आयाम भी हैं। ईरान मूलतः शिया-संप्रदाय प्रधान देश है, और अमेरिका का खास दोस्त देश सऊदी अरब मूलतः सुन्नी-संप्रदाय। ईरान को बाजार से खदेड़ देना सिर्फ आर्थिक वजहों से नहीं हो रहा। अमेरिका कच्चे तेल के बाजार में अपने दोस्तों को सबसे ऊपर देखना चाहता है। ईरान से कच्चा तेल न खरीदने की चेतावनी देने के साथ अमेरिका ने यह भी कहा है कि ईरान के बाजार से बाहर होने से तेल आपूर्ति में जो भी कमी आएगी, उसकी पूर्ति अमेरिका के मित्र देश-सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात और खुद अमेरिका करेगा।

नोट करने की बात यह भी है कि अब विश्व के तेल बाजार में अमेरिका खरीदार होने के साथ-साथ खुद निर्यातक भी बन रहा है। अमेरिका ने शेल तकनीक से तेल पैदा करने की जुगत जमा ली है, और तेल वहां भी होने लगा है। अलबता, थोड़ी महंगी दरों पर। वित्तीय वर्ष 2018-19 के पहले दस महीनों में भारत ने अपने कुल तेल आयात का करीब 3 प्रतिशत अमेरिका से प्राप्त किया यानी अमेरिका तेल बाजार का एक खिलाड़ी आने वाले सालों में हो सकता है, यह बात भी नोट की जानी चाहिए। अमेरिका तेल बाजार में खरीदार, विक्रेता और अंपायर सब कुछ बनना चाहता है, जो अस्वाभाविक भी नहीं। कोई भी देश अंतरराष्ट्रीय बाजार में अपनी राजनीतिक हैसियत का आर्थिक इस्तेमाल करता है। अमेरिका भी कर रहा है। अमेरिका भारत से कह रहा है कि हम पाक आतंकी मसूदा अजहर पर आपका अंतरराष्ट्रीय साथ दे रहे हैं, तो आप भी हमारी चिंताओं को समझें और ईरान से कच्चा तेल न खरीदें। इस चक्कर में हो यह रहा है कि तेल के बाजार से एक महत्वपूर्ण विक्रेता बाहर हो रहा है। किसी बाजार से किसी महत्वपूर्ण विक्रेता के कम होने के क्या खतरे होते हैं, यह ऐसे समझना चाहिए। जैसे आलू बाजार में पांच आलू विक्रेता हैं, एक विक्रेता बाजार से कम हो जाए तो आपूर्ति कम हो जाएगी। आपूर्ति कम होने का मतलब है कि खरीदने वाले कम न हुए, बेचने वाले कम हो गए। तो आलू के भाव ऊपर जाएंगे। आलू बाजार से लेकर तेल बाजार तक बाजार के नियम एक से ही हैं।

कच्चे तेल के बाजार से एक महत्वपूर्ण विक्रेता कम हुआ तो बाकी सारे विक्रेता तेल के भाव बढ़ाएंगे। यही हो रहा है जो ब्रेंट दिसम्बर, 2018 के अंत में 52 डॉलर प्रति बैरल मिल रहा था, आज 74 डॉलर प्रति बैरल के भाव पर पहुंच गया है। अक्टूबर, 2018 में ब्रेंट के भावों का स्तर 86 प्रति बैरल तक जा चुका है। गौरतलब है कि कच्चे तेल का बाजार सघन राजनीति से प्रभावित है। अमेरिका को ईरान पसंद नहीं है। वेनेजुएला के वर्तमान शासक पसंद नहीं हैं। वेनेजुएला तेल का बड़ा आपूर्तिकर्ता है। वेनेजुएला इस समय भीषण राजनीतिक अनिश्चितताओं के रूबरू है यानी कुल मिलाकर तेल की आपूर्ति पर आशंकाओं के बादल घिरे हैं, जबकि तेल की मांग की कमी के आसार नहीं दिखाई पड़ रहे। भारत को जब विश्व की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था के तौर पर चिह्नित किया जाता है, तो इसका एक आशय यह भी होता है कि भारत में ऑटोमोबाइल की सेल बढ़ रही है, और कच्चे तेल की मांग लगातार बढ़ रही है। ईरान के कच्चे तेल के

बाजार से बाहर होने का भारत को महंगा कच्चा तेल खरीदना पड़ेगा। कच्चा तेल ग्लोबल बाजारों से डॉलर में खरीदा जाता है यानी भारत को ज्यादा डॉलर खर्चने होंगे यानी ज्यादा डॉलर की मांग होगी।

ज्यादा डॉलर की मांग का एक आशय हुआ कि रुपया कमजोर होगा यानी पहले अगर एक डॉलर के बदले 63 रुपये आते थे, और आज करीब 70 रुपये आ रहे हैं यानी वही डॉलर अब ज्यादा रुपये खरीदने की हैसियत रखता है। डॉलर की हैसियत बढ़ती तब है, जब उसकी मांग बढ़ती है। कच्चे तेल के भाव ऊपर की ओर जाएं तो रुपया कमजोर होता है। अक्टूबर, 2018 में ब्रेंट के भाव जब 86 डॉलर प्रति बैरल चले गए थे, तब रुपया बहुत ही कमजोर होकर 74.34 रुपये प्रति डॉलर के स्तर पर आ गया था यानी एक डॉलर से 74 रुपये 34 पैसे लिए जा सकते थे। गिरता रुपया अर्थव्यवस्था की चिंता का विषय हो जाता है, इसमें आयात महंगे हो जाते हैं। इसलिए जैसे ही ब्रेंट के महंगे होने की खबर आई, आशंकाओं के चलते शेयर बाजार सूचकांक करीब 500 बिंदु गिर गया। कुल मिलाकर ईरान के कच्चे तेल के बाजार से बाहर होने से तेल की आपूर्ति पर संकट नहीं आएगा पर भाव जरूर बढ़ जाएंगे।

एक अनुमान के मुताबिक कच्चे तेल के भावों में एक डॉलर की बढ़ोतरी से भारत को करीब 10,700 करोड़ रुपये की चपत लगती है यानी इतना ज्यादा पैसा देना पड़ता है। अगर ब्रेंट के भाव अभी के 74 डॉलर से बढ़कर 84 डॉलर प्रति बैरल हो गए तो एक लाख करोड़ रुपये से ज्यादा का घाटा होगा। यह रकम कितनी बड़ी है, इसे यूँ समझा सकता है। सरकार की इच्छा है कि वस्तु एवं सेवाकर से हर महीने एक लाख करोड़ रुपये का संग्रह हो जाए। इतना संग्रह हर महीने हो नहीं पाता, यह अलग बात है। बढ़ते आयात खर्च का एक आशय यह भी है कि सरकार का राजकोषीय घाटा बढ़ सकता है। कच्चे तेल के बढ़े हुए भाव विकट महंगाईकारी होते हैं। लगभग हर वस्तु की लागत में परिवहन लागत शामिल करनी पड़ती है, महंगा कच्चा तेल हर आइटम की लागत बढ़ा देता है, महंगाई बढ़ने का मतलब है कि देर सबेर ब्याज दर भी बढ़ती हैं, जिससे कारोबारी परेशान होते हैं। कुल मिलाकर अमेरिका और तमाम देशों की राजनीतिक रंजिशें भारतीय अर्थव्यवस्था को बुरी तरह से प्रभावित कर सकती हैं, ऐसी आशंका सच साबित ना हो, यह शुभकामना सबको करनी चाहिए।

---